१.१. दलित : अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक काल में साहित्य के क्षेत्र में 'दलित' शब्द चर्चा का विषय है। 'दलित' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त है। शब्दकोशों के अनुसार इसका अर्थ है ''मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ,''[1] ''टूटा हुआ, रौंदा या कुचला हुआ।''[2] 'दलित' शब्द की उत्पत्ति 'दल' धातु से माना जाता है। संस्कृत शब्दकोश के अनुसार ''दलित–broken, burst, split''[3] डॉ. आनंद वास्कर के अनुसार ''दलित शब्द आधुनिक (50–60 वर्ष पूर्व का) है लेकिन 'दलितपन' प्राचीन है। अतः प्राचीन साहित्य में शूद्र, अतिशूद्र, चंडाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जो कि ये सभी शब्द 'दलित' शब्द के ही पुरखे हैं।''[4] अतः इस शब्द के बदले ऐसे अनेक स्थानीय शब्द भी प्रचलित है। मोहनदास करमचंद गांधी ने शूद्र, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्द के बदले 'हरिजन' शब्द के प्रयोग को महत्व दिया। जिसका अर्थ है 'ईश्वर की संतान'। तमिलनाडू, कर्नाटक और आंध्रा में 'आदि द्रविड', आदि कर्नाटक, आदि आन्ध्रा' शब्द भी 'दलित' शब्द के समानार्थी रूप में प्रचलित थे, आदि शब्द का अर्थ है 'आदिनिवासी'। डॉ. अंबेडकर ने मराठी में 'बहिष्कृत' तथा 'अस्पृश्य' शब्द का प्रयोग किया।

---

1. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त शब्द सागर, पृ. 468
2. जी. नवल, नलंदा विशाल शब्द सागर, पृ. 567
3. वी.एस. आप्टे (सं), स्टुटेंट्स इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 641
4. डॉ. आनंद वास्कर, हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, पृ. 18

भारतीय संविधान में 'दलित' शब्द के बदले 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' का प्रयोग हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने ही 'दलित' शब्द को असंवैधानिक घोषित किया। "The term 'scheduled castes and scheduled tribes' (SC/ST) are the official terms used in Indian Government documents to identify former 'untouchables' and tribes. However in 2008 the National Commission for scheduled castes, noticing that 'Dalit' was used interchangably with the official term 'scheduled castes', called the term 'unconstitutional' and asked the state government to end its use."[1] सरकार एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक दृष्टि से मान्यता न दी जाने के बावजूद भी अछूत जन–समाज के नेता दलित शब्द के पक्षधर दिखाई देते हैं।

'दलित' शब्द का प्रचार प्रसार दलित पैंथर आन्दोलन द्वारा हुआ। दलित पैंथर इस शब्द को 1972 के मानिफेस्टो में इस प्रकार परिभाषित किया है – "A member of scheduled castes and tribes, neo-budhist the working people, the landless and poor peasents, womens and all those who are being exploited politically, economically and in the name of religion"[2] इस परिभाषा के अंतर्गत राजनैतिक, आर्थिक और धर्म के नाम पर शोषित सभी श्रमिक एवं महिला दलित हैं। श्री गंगाधर पांतावणे 'दलित' शब्द के बारे में कहा गया है कि "To me Dalit is not a caste. He is a man exploited by the social and economic traditions of his country. He does not believe in God, rebirth, soul, holy books teaching separatism, fate and heaven because they have made him a slave, He does believe in humanism. Dalit is a symbol of change and revolution"[3] यहाँ जाति से भिन्न होकर दलित शब्द का और मानवता पर बल देकर इसे बदलाव और विद्रोह का प्रतीक माना गया है।

---

1. Express India daily, 18.01.2008
2. Sanjay Paswan, Paramanshi Jaideva (Edi.), Encyclopedia of Dalits in India, P. 25
3. Gangadhar V. Panthavane, Encyclopedia of Dalits in India, Vol. 1. Edi. Sanjay Paswan, Paramanshi Jaidev, P. 14

निष्कर्षतः 'दलित' एक ऐसा शब्द है, जो परंपरागत रूप से निचले पायदान के या अछूत और शूद्र माने जाने वाले लोगों द्वारा अपने आपको संबोधित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह विद्रोह और बदलाव का प्रतीक है।

१.२. वर्ण-व्यवस्था

हिन्दू धर्म मूलतः वर्णाश्रम पर आधारित है। गणेश मंत्री के अनुसार ''यह मान्यता रही है कि आरंभ में सिर्फ तीन वर्ण थे–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। कालांतर में उसमें चतुर्थ वर्ण 'शूद्र' भी जुड़ गया।''[1] इस चतुर्थ वर्ण शूद्र में अनार्य, दस्यु तथा दास थे। इसलिए ही समाज में शूद्र बहिष्कृत जाति के रूप में इनसानियत का हकदार भी नहीं रहे, वे एक प्रकार से दास थे। दास प्रथा का वर्णन करते हुए देवराज चानना ने लिखा है, ''वैदिक काल में गौर वर्ण और श्याम वर्ण की दो जातियों के बीच का भेद सरलता से देखा जा सकता है। उनमें कुछ संस्कृतिगत भेद भी है। 'दास' शब्द से काले चमड़ी वाले लोगों का बोध होता है, जिसे दूसरी जाति ने जीतकर अपने अधीन कर लिया था।''[2] अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिए आर्यों ने सामाजिक और धार्मिक नियम बनाये। इसके तहत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही समाज के नियंता बने। आर्यों के नियम ही वेद और स्मृति में वर्णित हैं, जो हिन्दू धर्म के स्तंभ माने गये। आर्यों ने अपने द्वारा संस्थागत वर्णाश्रम प्रणाली को ईश्वरीय घोषित किया। इस प्रकार हिन्दू जाति–व्यवस्था ने श्रेणीबद्ध समाज व्यवस्था को धार्मिक आधार प्रदान किया।

---

1. गणेश मंत्री, गांधी और अंबेडकर, पृ. 15
2. देवराज चानना, प्राचीन भारत में दास प्रथा, पृ. 132

बाबू जगजीवन राम आर्य आक्रांता और भारत मूल के लोगों के मध्य संघर्ष की पुष्टि करते हुए लिखते हैं। ''जब आक्रमणकारी आर्यों और भारत के मूल निवासियों के बीच टकराहट हुआ तो परिणामस्वरूप सांस्कृतिक भेदभाव तो अधिक उत्कट हुए ही, व्यवसायगत भेदभाव भी अधिक बढ़ गए। उसी समय चौथी जाति शूद्र का प्रादुर्भाव हुआ और हमारा समाज चातुर्वर्ण्य समाज बन गया। उस समय के नियामक ऋषि–मुनियों ने वर्ण व्यवस्था को सनातन तथा शाश्वत की संज्ञा दी और धीरे–धीरे लोगों में यह विश्वास फैल गया है कि जाति प्रथा ईश्वर प्रदत्त व्यवस्था है।''[1] जगजीवन राम इस यथार्थ को उद्घाटित करते हैं कि जाति–प्रथा, सवर्ण–व्यवस्था की देने देन है। फिर भी वह इसे ईश्वर प्रदत्त सिद्ध करने की कोशिश करती हैं।

भारत के प्राचीन साहित्य ऋग्वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत और अन्य शास्त्रों में शूद्रों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुषसूक्त में वर्णव्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार है –

''ब्राह्मणो अस्य मुखमासीत बाहूराजन्य कृतः।
ऊरू तदस्य यदू वैश्य पदभ्यां शूद्रो अजायतः।।[2]

इस प्रकार प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र का उत्भव हुआ। ''ब्राह्मण को विचारक, दार्शनिक और आध्यात्मिक समाज के लिए मार्गदर्शक माना जाता था। क्षत्रिय या योद्धा देशर के शासक और आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करता था वैश्य को वाणिज्य और कृषि के कामों का पालन करना था और शूद्र का वर्ण प्रणाली में सभी वर्णों का सेवा करना या

1. जगजीवन राम, भारत में जातिवाद की चुनौती, पृ. 9
2. दयानंद सरस्वती (व्याख्याता), ऋग्वेद – 10.90.12, भाग दो, पृ. 46

शारीरिक काम करना पडता था।''[1] प्रारंभ से ही दास या शूद्र वर्ग दो भागों में विभाजित होता गया। पहला अबहिष्कृत शूद्र या पिछडा वर्ग, जिसे खेती, पशुपालन और शिल्पकार कार्यों में रहना पडता था। दूसरा बहिष्कृत शूद्र और अस्पृश्य वर्ग जिसे घृणावाद साफ–सफाई और चर्मकारों के कार्य दिए जाते थे। वे लोग आज के अछूतों के पूर्वज थे जिन्हें अस्पृश्य या पंचम की संज्ञा दी जाती थी। समाज के निचले वर्ग को घृणित व्यवसाय करने के लिए विवश किया गया। धार्मिक दृष्टि से ऐसे अपवित्र माना काम करने वाला उपेक्षा और तिरस्कार का पात्र बन गया। समाज के निम्न वर्ण और सहायक जातियों को पवित्र–अपवित्र भेदभाव से पीडित किया जाने लगा। इस प्रसंग में मानव शास्त्री डी.एन. मजुमदार का मानना है कि, ''जातीय प्रस्थिति किसी व्यवसाय का परिणाम नहीं है, बल्कि उस धार्मिक व्यवसाय के साथ जुड़ी रहती है। झाडू–बुहारना, मृतक का दाहकर्म, मृतपशुओं के शरीर से चमडा उतारना आदि अपावन व्यवसाय धार्मिक दृष्टि से अपवित्र होते है, अतः ये नीची प्रस्थिति के परिचायक है।''[2] मनुष्य से की जानेवाली नौकरी को भी सवर्ण मानसिकता के अनुसार पवित्र–अपवित्र घोषित कर नौकरियों को सामाजिक हैसियत निर्धारित करने लगी थी। जाति–व्यवस्था में यह सवर्णवादी मानसिकता ही दिखाई देती है।

पौराणिक महाकाव्यों में शूद्रों को अपमानित होने या समाज के बर्बर अत्याचारों का निशाना बनना पडा। 'रामायण' में शंबूक ऋषि की हत्या राम ने इसलिए की थी कि उन्होंने जातिगत शूद्र कर्म को छोडकर ब्राह्मण कर्म को अपनाया था। 'महाभारत' में भी ऐसा एक प्रसंग है एकलव्य और गुरु द्रोण का।

---

1. कर्ण सिंह, वर्णाश्रम धर्म एवं भारतीय समाज, पृ. 28
2. डी.एन. मजूमदार, सामाजिक मानव शास्त्र, पृ. 194

एकलव्य से अंगूठा इसलिए कटवालिया कि उन्होंने शूद्र होकर अस्त्रविद्या सीखी क्योंकि द्रोण ने एकलव्य को पहले से ही अस्त्रविद्या सिखाने से इनकार किया था। गोतम धर्मसूत्र के अनुसार, ''शूद्र द्विजों की सेवा करें उन्हीं के द्वारा अपनी जीविका प्राप्त करें, जैसे – पुराने वस्त्र, झूठन आदि प्राप्त करें।''[1] ऐसी स्थिति में शूद्रों पर अत्याचार होना स्वाभाविक था। ब्राह्मणों द्वारा रचित धर्मग्रंथों के इन नियमों का जब शूद्र पालन न करें, तो उसे अपराध माना जाता है और उसे क्रूर दण्ड भी दिया जाता है। याने सामाजिक न्याय से वंचित होकर दमन और उत्पीडन का शिकार होकर अवर्ण को जीना पड़ता है।

'मनुस्मृति' मानव जीवन और व्यवहार का ग्रंथ है। मनुस्मृति के अनुसार भी शूद्र का कार्य ब्राह्मणों की सेवा करना है। दण्ड व्यवस्था भी कठोर थी। मनुस्मृति में कहा गया है कि –

''एकजातिद्विजातीस्तु वाचा दारुणता क्षिपन्
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्य प्रभवो हि सः ।।240।।
x x x x x x x x x x x x x x
नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्वोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्यो ऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः।।282।।
धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्तमासेचयेतैलम वक्त्ते श्रोते च पार्थिवः ।।282।।'' [2]

---

1. डॉ. उमेशचन्द्र, गौतम धर्मसूत्राणि, पृ. 59–60
2. श्री. पं. जगदीशलाल शास्त्री, मनुस्मृति, पृ. 321

अर्थात् द्विज को दारुण वचन से आक्षेप करने वाले शूद्रों को उसकी जीभ काटकर दण्डित करना चाहिए, क्योंकि वह नीच से उत्पन्न है। ब्राह्मणवादी तीनों वर्णों के नाम तथा जाति का उच्चारण करने वाले शूद्र के मुख में जलती हुई दश अंगुल लंबी लोहे की कील डालनी चाहिए। और यदि अभिमान से शूद्र ब्राह्मण के लिए धर्म का उपदेश करें तो राजा उसके मुख और कान में औंटता हुआ तेल डाल दे। ये नियामक समाज की चलाकी इतनी तेज़ थी कि इसकी काली छाया पांच हज़ार साल से पूरे समाज को भ्रमित कर रही है। इसलिए मनु एक व्यक्ति नहीं एक विचार के रूप में पनपा। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसके तहत शूद्र सर्वाधिक शोषण का शिकार हुआ।

हम देख सकते है कि चातुर्वण्य समाज–व्यवस्था के निर्माण में अनेक शताब्दियाँ लगीं। इसमें समाज परिवर्तन, सामाजिक विघटन, शुद्धता, अशुद्धता आदि का बहुत बड़ा हाथ रहा। सामाजिक विकास की अवस्था में चातुर्वर्ण्य समाज एक तरफ से सामाजिक विभाजन था यह उत्पादन वितरण और उपभोग की एक व्यवस्था थी। कालांतर में यही वर्ण विभाजन पुश्तैनी सजातीय विभाजन हो गया।

मौर्यकाल में भी शूद्रों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। इस काल में चाणक्य के अर्थशास्त्र की रचना हुई थी। उन्होंने भी वर्णभेद को और कठोर बना दिया। उनके अनुसार ''शूद्र का वह अंग जिससे वह किसी ब्राह्मण को मारता है, काट दिया जाना चाहिए। यदि कोई क्षत्रिय असुरक्षित ब्राह्मणी का भ्रष्ट कर देता है, उसे उच्चतम अपमान की सजा मिलनी चाहिए, वैश्य की संपत्ति छीन लेनी चाहिए, अगर शूद्र ऐसा करे तो उसे जीवित ही चटाई में

लपेटकर जलाकर मार देना चाहिए।''[1] इस प्रकार मौर्यकाल में भी शूद्रों की स्थिति कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई देता।

१.३. जाति-व्यवस्था

आगे चलकर वर्ण–व्यवस्था का स्थान जाति–व्यवस्था ने ग्रहण किया। प्राचीन काल में ब्राह्मण और शूद्र का नाता जो था वही जाति–व्यवस्था में भी बना रहा। ''संप्रति जाति की दृष्टि से शूद्र जाति की वही स्थिति है कि शूद्र नाम की जाति से कोई जाति ही उपलब्ध नहीं होती है, यद्यपि शूद्र जाति के अन्तर्गत आनेवाले अनेक जातियों का अस्तित्व उनके नाम से प्राप्त होता है।''[2] जाति व्यवस्था में आदमी की सामाजिक अस्तित्व उसके जन्म पर निर्भर था, न कि उसकी योग्यता पर। जाति व्यवस्था वर्णाश्रम के समान पदानुक्रमित श्रेणी–श्रृंखला आबद्ध थी और इस सामाजिक श्रेणी में ब्राह्मण ही सर्वोच्च था। ये लोग ही सामाजिक और धार्मिक क्रियाकलाप और पुरोहित का काम कर सकते थे।

इस पदानुक्रम श्रेणी में भी निम्नतम धरातल पर अछूतों की जगह नियत थी। जाति–व्यवस्था को भी धर्म द्वारा पुनीत घोषित कर दिया गया था और हिन्दू समाज की अन्य जातियों की सेवा करने को, हलखोर, चमार आदि निम्नतम पेशा करने के लिए ये बाध्य भी थे। जाति–व्यवस्था में प्रत्येक उच्च जाति अपने को नीची जाति की तुलना में ऊँचा समझती थी तथा शुद्ध मानती थी, और अपने से ऊपर की जाति से निम्न और अशुद्ध मानती थी। इस कारण समूची जीवन छोटी–छोटी जातियों में विभाजित था। यही वजह है शोषित जातियाँ कभी भी एक जैसा दुःख झेलने के बावजूद एकजुट नहीं हो पाई हैं।

---

1. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, उदयवीर शास्त्री (व्याख्याता), पृ. 94, 170
2. डॉ. विद्यालंकार, भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, पृ. 136

सामाजिक भेदभाव का उल्लेख करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है – ''नीची जाति के लोगों को शहर और गाँव में अलग–अलग जमीन पर बसाया जाता था। उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं दिये जाते थे। वे सवर्णों के तालाब और कुओं से पानी भी नहीं ले सकते थे। अछूतों के दृष्टि मात्र से सवर्ण अशुद्ध हो जाते थे।''[1] ये पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला, सामाजिक असमानता, सजातीय विवाह और भोजन, पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता का अभाव आदि जाति–व्यवस्था के प्रमुख लक्षण बन गये थे।

१.४. दलित आन्दोलन : विभिन्न चरण

सामाजिक आन्दोलन किसी भी समाज में अलगाव तथा असमानता की परिस्थितियों के खिलाफ मानवीय प्रतिक्रिया स्वरूप निर्मित होते हैं। हर एक आन्दोलन किसी विशेष उद्देश्य के लिए कुछ व्यक्तियों, समूहों या समुदाय का संगठित प्रयास होता है। एम.एस. राव के अनुसार ''एक सामाजिक आन्दोलन एक समाज के एक भाग में आंशिक या पूर्ण बदलाव लाने के लिए एक विचारधारा के साथ एवं सामूहिक संचालन के साथ संगठित प्रयास है।''[2] ज्यादातर सामाजिक आन्दोलन मौजूदा सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट होकर उसके खिलाफ छेडे जाते हैं। अधिकतर सामाजिक आन्दोलनों की जड़ सामाजिक समस्याओं में है। इस लिए किसी भी प्रकार के सामाजिक आन्दोलन के कारक असहमति और विद्रोह है। सामाजिक आन्दोलन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनैतिक व्यवस्था के साथ मौलिक असहमति के परिणाम स्वरूप लोगों के संगठन के साथ प्रारंभ होता हैं।

---

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी, जातिवाद और रंगभेद, पृ. 32
2. एम.एस. राव, भारत के सामाजिक आन्दोलन, पृ. 3

किसी भी आन्दोलन की भाँति दलित आन्दोलन भी एक सामाजिक आन्दोलन है। दलितों ने अपने आन्दोलनों को भारतीय समाज में व्याप्त वर्णवादी, जातिवादी व्यवस्था के अत्याचारों और असमानताओं के खिलाफ छेड़ा है। घनश्याम शाह के अनुसार, "There has not been a single, unified Dalit movement in the country, now or in the past. Different movements have highlighted different issues related to Dalits, around different ideologies. However, all of them, overtly or covertly, assert a Dalit identity, though its meaning is not identical and precies for everyone. Identity is concerned with the self-esteem and self-image of a community- real or imaginary - dealing with the existence and role : 'Who are we?' 'What position do we have in society vis-a-vis other communities?' 'How are we related to others?' Notwith-standing differences in the nature of Dalit movements and the meaning of identity, there has been a common quest - the quest for equality, self - dignity and eradication of untouchability "[1] अस्पृश्यता का संबंध धर्म और जाति से है। धार्मिक विचारधारा केवल मानव मन को ही नहीं प्रभावित करती बल्कि सामाजिक संस्कार और आर्थिक संरचना को भी निर्धारित करती है।

दलित आन्दोलनों को अछूत जातियों द्वारा जातिगत दमन के विरुद्ध किये गये असंख्य संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। यह संघर्ष औपनिवेशिक काल में आकर सामाजिक और आर्थिक बदलाव के साथ साथ राजनैतिक बदलाव को भी परिलक्षित करता है। इसमें ज्योतिबा फूले, ई.वी. रामस्वामि नायकर, डॉ. अंबेडकर आदि की रणनीतियाँ महत्वपूर्ण हैं। 19वीं शताब्दी के समय यह आन्दोलन ज्यादा ताकतवर दिखता है। ये प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा मानवाधिकारों के

1. Ganashyam Shah, Dalit Identity and Politics, Edi. Ganashyam Shah, P. No. 195

लिए लड़ते है और दूसरी तरफ हिन्दू जाति–व्यवस्था को तोडने का कार्य करते हैं। इस प्रकार दलित विरोध मानवता को स्थापित करने का संघर्ष है और बाद में यह धार्मिक, शैक्षिक तथा राजनैतिक मोड लेता है।

१.४.१. सत्यशोधक समाज आन्दोलन

आधुनिक भारत में दलित आन्दोलन का प्रारंभ महात्मा ज्योतिबा फूले से होता है। महाराष्ट्रा में जाति–पांति विरोधी आन्दोलन की शुरुआत इस महान व्यक्ति द्वारा स्थापित 'सत्यशोधक समाज' के जरिए सन् 1897 ई. में हुआ। ''सत्यशोधक समाज आन्दोलन ब्राह्मणों की सर्वोच्चता पर आधारित हिन्दू समाज व्यवस्था के झूठ, अन्याय और दोगलेपन का विरोध करने वाला आन्दोलन था।''[1] उस जमाने में, जबकि हिन्दू जाति व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थाप प्राप्त था जातिवादी असमानता के विरुद्ध और सबकी समानता के लिए चलाने वाले संघर्ष की धार ब्राह्मणों के खिलाफ होना स्वाभाविक ही था। पूरे महाराष्ट्र से लगभग साठ प्रतिष्ठित और परखे हुए समाज सेवी एकत्रित हुए, जिन्होंने सर्वसम्मति से ज्योतिबा को संस्थापक अध्यक्ष और नारायणराव कडलक को मंत्री निर्वाचित किया। सत्यशोधक समाज के प्रमुख उद्देश्य थे :

1. ईश्वर एक है। वह सर्वव्यापी, निर्गुण, निर्विकार और सरल स्वरूप है। वह प्राणिमात्र में व्यापक है।
2. प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर भक्ति का अधिकार है। सर्वसाक्षी परमेश्वर की प्रार्थना और चिंतन के लिए किसी मध्यस्थ की, किसी दलाल की आवश्यकता नहीं है।

---

1. बी.टी. रणदिवे, जाति क्यों नहीं जाती? सं. सुभाषचन्द्र, पृ. 97

3. मनुष्य जाति के गुण उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करते हैं।

4. कोई भी ग्रंथ न तो ईश्वर प्रणीत है, न वह पूर्णरूपेण प्रमाण के रूप में उपलब्ध है।

5. परमेश्वर शारीरिक रंग–रूप में अवतार धारण नहीं करता।

6. पुनर्जन्म, कर्मकांड, जप–तप या धर्म गोष्ठियां, अज्ञानमूलक हैं।''[1]

वह जातीय एकता पर बल देता था इसी लिए सभी जाति और धर्म के अनुयायी सत्यशोधक समाज के सदस्य बन सकते थे। समाज में मुस्लीं, ईसाई, यहूदी, पारसी, ब्राह्मण, कोली, महार, चमार, माली आदि जाति के लोग थे। समाज की बैठकों में नारी शिक्षा, दलित महिला शिक्षा, स्वदेशी के प्रचार तथा पुरोहितों द्वारा समाज को गुमराह किये जाने पर चर्चा होती थी। समाज ने घोषणा कर रखी थी कि वह जाति–पांत, अस्पृश्यता, धर्म की संकीर्णता और मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर प्रकार की शोषण के खिलाफ है। विवाहों में अपव्यय, ऊँच–नीच, मूर्ति और देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना का घोर विरोधी था। मानवता के पक्षधर सत्यशोधक समाज के प्रवर्तनों से पंडित पुरोहितों की रोजी रोटी छीन गई। पुणे की अछूत मलिन बस्तियों में तथा कामगरों और गरीब लोगों की बस्तियों में सत्यशोधक समाज की बहुत ही शाखाएँ स्थापित हुई। ''जातिभेद, स्पर्श–अस्पृश्यता की भावना से पूर्णतः मुक्त एक एकेश्वरी पंथ के रूप में वह विकसित होता रहा। सभी धार्मिक अनुष्ठानों से ब्राह्मणों की दलाली नष्ट करने का बेड़ा सत्यशोधक समाज ने उठाया था।''[2] उस कार्य में समाज को सीमित यश भी मिला।

---

1. कन्हैय्यालाल चंचरीक, भारत में दलित आन्दोलन, पृ. 42
2. डॉ. मु.ब. शहा, भारतीय समाज क्रांति के दस्तावेज, पृ. 33

सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता सरल विधि से विवाह और अन्य मांगलिक कार्य बिना किसी व्यय से संपन्न कराने लगे। इससे ब्राह्मणों का बहिष्कार हुआ। इसके विरुद्ध ब्राह्मण भी जनता को भटकाने लगे। इसके विरोध में ज्योतिबा ने अपना आन्दोलन तेज़ किया और अछूतों और दलितों को सावधान किया कि वे लोग इन ब्राह्मणों के भटकावे में न आएं। ''अपने अलग पहचान के लिए सत्यशोधक समाज के प्रचारक और उपदेशक सिर पर सफा बाँधते थे तथा कंधे पर केवल रखते थे। हाथ में ढ़ोल रहता था। गरीब और शूद्र जाति की बस्तियों में ढ़ोल बजाकर लोगों को इकट्टा किया जाता था। उन्हें सीधे सादे ढंग से शिक्षा और सामाजिक अधिकारों को पाने के लिए सजग किया जाता था, जिससे वे अपनी मानसिक दक्षता को त्यागकर स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करें।''[1] पिछडे वर्ग के लोगों में सामाजिक जागरूकता पैदा करना ही इस आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य रहा। सामाजिक मुक्ति के लिए उन्होंने शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया। सन् 1851 ई. में निम्न जाति के लोगों और अछूत लड़कियों के लिए स्फूल खोला। शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए एक सोसाइटी की स्थापना की। सन् 1860 ई. में विधवा विवाह करवाया। सन् 1863 में अनाथ बच्चों के लिए अनाथालय खोला। ज्योतिबा फूले ने ब्राह्मणवादी चिंतन परंपरा एवं इसके इतिहास का गहन अध्ययन किया। सन् 1873 ई. में इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गुलामगिरी' प्रकाशित किया। जिसमें उन्होंने अछूतों की गुलामी और ब्राह्मणों के शोषण का वर्णन किया। उनका मानना था कि वर्णाश्रम व्यवस्था में वर्ण की उत्पत्ति का जो सिद्धांत है, वह तमाम बुराइयों का स्रोत है। उन्होंने कर्मफल, पुनर्जन्म और मोक्ष के सिद्धांत की कड़ी आलोचना की। आलोचना की इस प्रक्रिया में उन्होंने तमाम धार्मिक ग्रंथों

---

1. कन्हैय्यालाल चंचरीक, भारत में दलित आन्दोलन, पृ. 46

की भर्त्सना की जिनमें अमानवीय कृत्यों को सही ठहराया था। उनके अनुसार ''वेद, पुराण और स्मृति सबके सब वर्णाश्रम समाज को सही ठहराने के लिए लिखा गया है। इसलिए इन ग्रंथों का निराकरण करना चाहिए। ब्राह्मणों के जिन प्रमुख ग्रंथों के आधार पर हम (शूद्र–अतिशूद्र) ब्राह्मणों के गुलाम हैं और उनके जिन ग्रंथों और शास्त्रों में हमारी गुलामी के समर्थन में लेख लिखे हुए मिलते है, उन सभी ग्रंथों का धर्मशास्त्रों का और उनका जिन जिन धर्मशास्त्रों से संबंध होगा उन सभी का हम निषेध करते हैं।''[1] इस प्रकार वे वर्णाश्रम व्यवस्था और वैदिक धर्म का विरोध कर रहे थे।

सन् 1889 ई. में इन्होंने 'सत्यशोधक समाज' का नाम बदलकर 'सार्वजनिक सत्य धर्म' कर दिया। यह धर्म वैदिक धर्म के बदले एक नए धर्म की नीव रखी थी। इस प्रकार वह जाति प्रथा और ब्राह्मणवाद के खिलाफ विद्रोह किया और अछूत, पिछड़ी जातियों तथा भारतीय स्त्रियों की मुक्ति के लिए सामाजिक आन्दोलन चलाया। जनचेतना को जागृत करने में यह आन्दोलन सफल हुआ। लेकिन यह कुछ ही प्रदेशों तक सीमित रहा, देशव्यापी नहीं हो सका फिर भी यह देश में आने वाले आन्दोलनों के लिए एक ठोस वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में सफल हुआ।

१.४.२. आत्मसम्मान आन्दोलन

'आत्मसम्मान आन्दोलन' बीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक में ई.वी. रामस्वामि नायकर के नेतृत्व में तमिलनाडु में हुआ था। ''ई.वी. रामस्वामि नायकर पेरियोर के नाम से जाने जाते हैं। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य था आम जनता

1. ज्योतिबा फूले, गुलामगिरी, पृ. 21

के हित में सामाजिक सुधार, दक्षिण के उग्र और क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध ई.वी. रामस्वामी नायकर की छवि सर्वथा मौलिक और सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने वाले अग्रणी समाज सुधारक दलित नेता के रूप में आंकी गई है।''[1] उन्होंने धर्म को दुनिया में अन्याय के कारण माना। उनका कथन है – ''जब मैं सामाजिक कार्यों में लगा हुआ था तब मैंने जाना कि धर्म के नाम पर किए जाने वाले कार्य ही मनुष्य के विकास में अधिक बाधक है।''[2] धर्म को नकारते हुए उन्होंने हिन्दुत्व को धर्म मानने से इनकार किया। उनके अनुसार, ''यह ब्राह्मणों का षड्यंत्र है। उन्होंने लोगों को यह विश्वास दिला दिया है कि हिन्दुत्व भी एक धर्म है।''[3] वह धर्मशास्त्रों की पवित्रता में विश्वास नहीं करते थे और उनकी होली जलाते थे। ''उन्होंने रामायण का अपने स्तर से अध्ययन किया था और 'रामायण ए ट्रू रीडिंग' पुस्तक लिखकर उन समस्त धारणाओं को ध्वस्त कर दिया था जो ब्राह्मणों ने आम जनता में पैदा की थी।''[4] उनमें ब्राह्मणवाद के खिलाफ इतना विद्रोह था कि उन्होंने दशहरे के अवसर पर रावण दहन के विरुद्ध राम, लक्ष्मण और भरत के पुतले जलाए। उन्होंने कहा, ''भारत में जब तक ईश्वर का अस्तित्व रहेगा तब तक छुआछूत रहेगा।''[5] अस्पृश्यता का घोर विरोध करने वाले पेरियोर ने अछूत समुदाय से स्पष्टतः सामाजिक क्रांति का आह्वान किया।

---

1. कन्हैय्यालाल चंचरीक, भारत में दलित आन्दोलन, भाग–1, पृ. 215
2. ई.वी. रामस्वामि नायकर, सामाजिक क्रांति का दस्तावेज, भाग–2, सं. शंभुनाथ, पृ. 1212
3. –वही–पृ. 1219
4. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 55
5. ई.वी. रामस्वामि नायकर, सामाजिक क्रांति का दस्तावेज, भाग–2, सं. शंभुनाथ, पृ. 1218

अछूतों के शिक्षा के अधिकार पर बल देते हुए उन्होंने हिन्दुत्व को घटिया धर्म मानकर उसको खत्म कर देने की बात उठाई – ''हिन्दुत्व एक मायने में अन्य धर्मों से भिन्न है। इस धर्म में सभी ब्राह्मण शिक्षित हैं और सिर्फ वे ही ज्ञान और बौद्धिकता की बागडोर संभाले हुए हैं। दूसरे लोगों में 90 प्रतिशत से भी अधिक अशिक्षित और मूर्ख हैं। एक ही धर्म को मानने वाले समाज में यदि सिर्फ एक समुदाय शिक्षित और प्रभावी बन सकने का अधिकार रखता है तो क्या हमें यह नहीं समझना चाहिए कि यह धर्म अन्य समुदायों के लिए अनिष्टकर है? इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुत्व एक घटिया धर्म है। इसका नाश हो जाना चाहिए।''[1] पेरियोर अछूत और पिछड़ी जातियों तथा स्त्रियों की शिक्षा के समर्थक थे। हिन्दू वर्णवादी व्यवस्था में ब्राह्मण ही शिक्षा और ज्ञान का अधिकारी था। इसलिए उन्होंने हिन्दुत्व की नाश की बात कर हिन्दू वर्णवादी व्यवस्था का खुलकर विरोध किया। वे एक क्रांतिकारी के रूप में अछूतों का नेतृत्व करते रहे।

राजनैतिक स्तर पर देखा जाए तो प्रारंभ में पेरियोर ने कांग्रस के ध्वज तले दलित उपेक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। सन् 1927 ई. में पेरियोर की अध्यक्षता में 'तमिलनाडु कांग्रस' का अधिवेशन हुआ। इसमें उन्होंने दलित अधिकारों की खुलकर वकालत की। आगे सन् 1925 ई. में कांग्रस के कांचीपुरम अधिवेशन में गैर–ब्राह्मणों और समस्त दलित वर्ग के नेताओं को साथ में लेकर एक मसविदा तैयार किया। इनका आशय था कि ब्राह्मणों को उनकी आबादी के अनुपात से आरक्षण कर दिया जाय। पेरियोर के इस क्रांतिकारी चिंतन ने ब्राह्मणों

---

1. ई.वी. रामस्वामि नायकर, सामाजिक क्रांति का दस्तावेज, भाग–2, सं. शंभुनाथ, पृ. 1222

में संघर्ष पैदा किया। सन् 1925 ई. में कांग्रस पार्टी को ब्राह्मणवाद के वर्चस्व से प्रभावित मानकर कांग्रस त्याग दी। सन् 1944 ई. में उन्होंने द्रविड़ कष़गम की स्थापना किया।

वेद और धर्मशास्त्रों में वर्णित दलित विरोधी आलेखों को पेरियोर ने पूरे दक्षिण भारत में उजागर किया और सदियों से दासता और अस्पृश्यता से प्रताड़ित लोगों में चेतना का संचार किया। धीरे धीरे उनका समाज सुधार आन्दोलन दलितों में नई जागृति पैदा की और उन्हें अंधकार से निकालकर आत्मसम्मान और प्रगति के रास्ते दिखाये। वास्तव में यह दलितों में नई सामाजिक क्रांति का संदेश था।

१.४.३. आदि-धर्म आन्दोलन

आदि हिन्दू आन्दोलन से प्रेरणा ग्रहण कर पंजाब में सन् 1926 ई. में आदि–धर्म आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। इस आन्दोलन का दावा था कि वे भारत के आदि या मूल निवासी हैं और उनकी अपनी धार्मिक मान्यताएँ भी हैं। उनके ऊपर हिन्दू धर्म जबरन थोंपा गया है। आदि–धर्म आन्दोलन समान अधिकारों की प्राप्ति का संघर्ष था। पंजाब में संगठन चलाने वाले नेताओं ने यह भी माँग की और प्रचार किया कि आगामी जनगणना (1931) में उन्हें हिन्दू की बजाय आदि धर्मी लिखा जाना चाहिए। उन्होंने माँग की कि उन्हें सार्वजनिक कुओं से पानी भरने दिया जाए और हिन्दू जमीन्दारों की तरह समान भूमि अधिकार दिया जाएं। सार्वजनिक जातीय संपत्तियों का उपयोग करने की छूट हो और उन्हें ऊँची जातीयों के अत्याचारों से बचाया जाए। साथ ही उनके बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया जाए। सन् 1931 ई. के जनगणना के आधार पर देखे

तो सन् 1911 ई. के मुकाबले सन् 1931 ई. में पंजाब के अछूतों की जनसंख्या में गिरावट आई है। इसका जिक्र लोथियन समिति के लिए अछूतों की जनसंख्या संबंधी तथ्य प्रस्तुत करते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा – ''इसकी वजह आदि–धर्म आन्दोलन है। सन् 1931 ई. की जनगणना में भाग लेने वाले आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने अपने लोगों और स्वयं को आदि–धर्मी लिखवाया था, हिन्दू नहीं, जैसा कि पहले होता आया था।''[1] सरकार ने उनकी बात मान ली और जनगणना अधिकारियों के लिए आदेश जारी किया कि उन्हें नए शीर्षक में आदि–धर्मी लिखें। इससे अछूत जाति पंजाब में कई हिस्से में बंट गई। और सवर्ण हिन्दू और अछूतों में कई स्थानों में संघर्ष हुए।

इस प्रकार पंजाब का आदि–धर्म आन्दोलन आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक अधिकारों का बहुआयामी आन्दोलन था जो पूर्ण सफल नहीं बना फिर भी आंशिक सफलता मिली थी।

१.४.४. नाम शूद्र आन्दोलन

नाम शूद्र आन्दोलन बंगाल में हुआ। बंगाल में शूद्र 'चंडाल' कहा जाता था। वे लोग शिक्षा से वंचित थे क्योंकि उन लोगों के बीच यह गलत धारणा फैला दी गयी थी कि शिक्षा ग्रहण करना पाप है। इसी प्रकार की गलत फहमियों को दूर करना इस आन्दोलन का मकसद था। सन् 1891 ई. में 'चंडाल' शब्द के विरुद्ध 'नामशूद्र' शब्द प्रयुक्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार को निवेदन दिया गया। इसके फलस्वरूप सरकार ने चंडाल शब्द के विरुद्ध आदेश जारी किया। 'चांद गुरु' इस आन्दोलन का प्रमुख प्रवर्तक था। कँवल भारती के अनुसार ''चांद

1. डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड 2, प्र. सं. डॉ. श्यामसिंह शशि, पृ. 491

गुरु ने ब्राह्मणवाद से टक्कर लेने के लिए 'मतुआ धर्म' चलाया ओर नामशूद्रों में अंधविश्वास और गलत धारणा का विरोध किया। इस आन्दोलन के द्वारा चांद गुरु ने स्पष्ट घोषणा की थी कि छुआछूत की जो व्यवस्था ब्राह्मणों ने बनाई है उसे हम नहीं मानते। ब्राह्मणों के मंदिर में उन्हें प्रवेश नहीं चाहिए, उनके लिए अलग मंदिर होगा। वे समाज के निकृष्ट काम अब नहीं करेंगे।''[1] सन् 1912 ई. में उन्होंने 'नमः शूद्र' पत्रिका का प्रकाशन किया। इस प्रकार स्वयं दलितों में व्याप्त अंधविश्वासों को मिटाने के लिए स्कूल खोलकर उसमें दलित बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की।

यह आन्दोलन बंगाल में नमः शूद्र शब्द और मतुआ धर्म का प्रचार प्रसार करने में और शूद्रों में व्याप्त अंधविश्वासों को मिटाने में समर्थ निकला।

१.४.५. सतनामी आन्दोलन

मध्य प्रदेश में छत्तीसगठ इलाके में गुरु घासीदास द्वारा 'सतनामी संप्रदाय' को स्थापित किया गया। दलितों के बीच के जातीय भेदभाव को दूर करने का प्रयस इस आंदोलन द्वारा हुआ था। उनके आन्दोलन के तीन सूत्र थे–सतनामी बने, संगठन बनाओ और संघर्ष करो। इसके बारह नियमों का उल्लेख कंवल भारती ने अपनी पुस्तक 'दलित विमर्श की भूमिका' में यूं लिखा गया है – 1. मनुष्य की एक ही जाति है, वह है मानव–जाति, 2. हिंसाचार न करे, 3. मनुष्य का एक ही धर्म 'सत्धर्म' है, 4. मदिरा पान न करो, 5. अंधविश्वासी और परंपरावादी न बनो, 6. भाईचारा और मेल–मिलाप बढ़ाओ, 7. हीन भावना को त्याग दो, 8. स्त्री–पुरुष समान है, 9. मूर्ति–पूजा मत करो, मंदिर में मत जाओ, 10.

---

1. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 57

मेहनत करके कमाओ, खाओ, 11. अपनी व्यवस्था पर अटल रहो और 12. जीवन शरीर को मुर्दा बनाकर मत रखो।''[1] इस प्रकार दलितों के बीच जातीय भेदभाव दूर करने में सतनामी आन्दोलन ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की।

१.४.६. डॉ. अंबेडकर का आन्दोलन

अंबेडकर–पूर्व दलित आन्दोलनों ने भारत में सामाजिक परिवर्तन का जो वातावरण बनाया, उसे दलितों ने पसंद किया, पर ब्राह्मण व्यवस्था पर ज्यादा प्रभाव या परिवर्तन नहीं पड़ा था। क्योंकि इन आन्दोलनों में अपीलों और प्रतिरोधों पर ज़ोर दिया था। लेकिन इन आन्दोलनों ने आगे के आन्दोलनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। सन् 1919 ई. से लेकर डॉ. अेबेडकर दलित आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक बने। इस आन्दोलन की विशेषता को व्यक्त करते हुए कँवल भारती का कहना है – ''इस आन्दोलन की विशेषता यह है कि इसने हिन्दू व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही (डायरक्ट एक्शन) के रूप में खुला विद्रोह किया। खुले शब्दों में आप समझ सकते हैं कि सामूहिक रूप से हिन्दू व्यवस्था का घन उल्लंघन किया था। यह परिवर्तन सन् 1920 ई. के आसपास आया।''[2] इस परिवर्तन के कारणों को डॉ. अंबेडकर अपने निबंध 'अछूतों का विद्रोह' में इस प्रकार व्यक्त किया है कि ''पहला कारण यह था कि दलितों को यह अनुभव होने लगा था कि अपीलों और प्रतिरोध हिन्दू व्यवस्था को बदल नहीं सकते, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों पर इसका कोई असर नहीं होता था। दूसरा कारण यह था कि सरकार ने सभी सार्वजनिक सुविधाएँ और संस्थाएँ दलितों के लिए खोलने की

---

1. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 57
2. वही, पृ. 58

घोषणा कर दी थी। परन्तु, हिन्दुओं के विरोध के कारण दलित उसका उपयोग नहीं कर पा रहे थे। अंततः सीधी कार्यवाही करने के सिवा अपने अधिकार को पाने के लिए अन्य कोई रास्ता दलितों के पास बचा नहीं था।''[1] इसलिए अंबेडकर आन्दोलन सीधी कार्यवाही और खुले विद्रोह से युक्त है।

बाबा साहेब अंबेडकर के आन्दोलन को सहज रूप में समझने के लिए उनके आन्दोलन को तीन पडावों में विभाजित कर सकते हैं। पहला है सामाजिक सुधार आन्दोलन, दूसरा राजनीतिक आन्दोलन और तीसरा धार्मिक आन्दोलन।

१.४.६.१. सामाजिक सुधार आन्दोलन

अछूतोद्धार आन्दोलन के जरिए डॉ. अंबेडकर ने अपने सामाजिक आन्दोलन की शुरुआत की। सन् 1919 ई. में साउथ बरो समिति के सामने दलितों के पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए उन्होंने शुरुआत की थी। इस साक्ष्य में हिन्दू समाज में अछूत वर्ग के शोषण, सामाजिक–राजनीतिक उपेक्षा का उल्लेख था। उन्होंने यह तथ्य का भी उद्‌घाटन किया कि ''अछूतों के साथ जुडी हुई अस्पृश्यता ही उनके भौतिक एवं नैतिक उत्थान में बाधक होती है।''[2] इसी अस्पृश्यता ने उनके व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया है और सामाजिक, धार्मिक अशक्तताओं ने इसे मानव से गिरा दिया और दास बना दिया है।

दास को परिभाषित करते हुए अंबेडकर ने साक्ष्य में लिखा : ''दास की परिभाषा करते हुए प्लेटो ने कहा है कि दास वह है, जो दूसरों के कार्य करता है

---

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, अछूतों का विद्रोह, पृ. 15
2. डॉ. अंबेडकर, सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज़, सं. शंभुनाथ, पृ. 885

तथा दास का आचरण दूसरों द्वारा नियंत्रित होता है। यदि हम इस परिभाषा को मान लें तो अस्पृश्य सचमुच ही दास हैं। अस्पृश्यों को ऐसे सामाजिक ढांचे में <ky k x; k gSfd osv i uhn; uh; n'kk i j mQ r d u d jsA''[1] ब्राह्मणवाद के भाग्यवाद इनमें इतना धर कर लिया था कि वे कभी यह विचार करते ही नहीं हैं कि भाग्य ही सबकुछ नहीं है।

अस्पृश्यता को दलितों के विकास में बाधा मानते हुए अंबेडकर ने लिखा – ''अस्पृश्य शब्द में उनकी विपत्तियों और कष्टों का निचोड आ जाता है। अस्पृश्यता ने न केवल उनके व्यक्तित्व के विकास को अवरुद्ध कर दिया है, बल्कि उनके आर्थिक उन्नति के रास्ते में भी कांटे बोए हैं। उसने उनके कतिपय नागरिक अधिकारों को भी हड़प लिया है।''[2] नागरिकता की सार्थकता के लिए दो अधिकारों को उन्होंने महत्वपूर्ण माना। वे हैं – प्रनितिनित्व का अधिकार, राष्ट्र के अधीन पद धारण करने का अधिकार। लेकिन अस्पृश्यों की अस्पृश्यता ने उन्हें इन अधिकारों से कोसों दूर रखता है।

इस साक्ष्य पर अंबेडकर ने अछूतों के साथ जुडी हुई अस्पृश्यता को उनके भौतिक और नैतिक उत्थान में बाधक माना। धन संपदा का मुख्य स्रोत व्यापार, उद्योग और राजकीय तथा अन्य क्षेत्रों में नौकरी है। अछूत वर्ग के लोग अस्पृश्यता के कारण इसमें किसी भी क्षेत्र में काम नहीं कर सकते। इसलिए यह उनकी आर्थिक कमी का भी कारण बना। अस्पृश्यों के मताधिकार और निर्वाचक मंडल की आवश्यकता पर अंबेडकर ने जोर दिया और समिति में अस्पृश्यों के

---

1. डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड 2, प्र. सं. डॉ. श्यामसिंह शशि, पृ. 28
2. वही, पृ. 28

प्रतिनिधित्व के बारे में निर्णय करते समय अस्पृश्यों की आवश्यकता का ध्यान रखने की बात को भी उठाया।

सवर्ण हिन्दुओं के शोषण को अंग्रेज़ों ने मजबूत और गतिशील बनाया है। अछूत लोग इन सबसे अनभिज्ञ है। इन सब विसंगतियों और दुहरे शोषण के कुचक्र को तोडने के लिए और अछूत समाज को अवगत कराने के लिए डॉ. अंबेडकर ने पत्रिकाओं का संपादन किया।

१.४.६.१.१. पत्रिकाओं का संपादन

'मूकनायक' साप्ताहिक पत्रिका का संपादन अंबेडकर ने किया। इसका प्रथमांक 31 जनवरी 1920 को निकाला। इसमें डॉ. अंबेडकर का एक आलेख था 'मनोगत' यह जातीय और धार्मिक विषमता पर जोरदार लेखन था। 'मूकनायक' के ज़रिए उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मताधिकार, राजनैतिक अधिकार आदि से दलितों को अवगत कराने का प्रयास किया। 28 फरवरी 1920 के 'मूकनायक' के तीसरे अंक में डॉ. अंबेडकर ने लिखा कि ''जो सामाजिक बंधन उच्च जाति के हिन्दुओं के लिए पोषक हैं, वे इस बहिष्कृत समाज के लिए इतने घातक बन गए हैं कि यह वर्ग नागरिकता से भी वंचित हो गया है।''[1] अपनी इस पत्रिका के जरिये अंबेडकर ने सदियों से सताए गए लोगों को संगठित कर, उनपर थोपे हुए सामाजिक बंधनों को काटने का प्रयास किया।

---

1. डॉ. अंबेडकर, मूकनायक, अंक 3, 28.02.1920, पृ. 3

डॉ. अंबेडकर ने दलित आन्दोलनों को नई दिशा प्रदान करने और बहिष्कृत समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आवाज़ को और मजबूत करने के लिए सन् 1927 ई. मार्च 14 को 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन शुरु किया। यह मराठी भाषा में थी। सन् 1930 ई. में उन्होंने 'जनता' शीर्षक से एक अन्य पत्रिका का भी प्रकाशन किया। यह पत्रिका बाद में सन् 1956 ई. में 'प्रबुद्ध भारत' नाम से निकलने लगी।

इन पत्रिकाओं के जरिए उन्होंने दलितों की अस्मिता को उजागर करने के साथ–साथ हिन्दू धर्म की कमज़ोरियों तथा अस्पृश्यता के व्यवहार और जाति–व्यवस्था पर चोट की।

१.४.६.१.२. बहिष्कृत हितकारिणी सभा

डॉ. अंबेडकर ने दलित मुक्ति आन्दोलन को सक्रिय करने, दलितों की समस्याओं को व्यवस्थित रूप से जानने, समझने और उनको सरकार के समक्ष रखने के लिए एक केन्द्रीय संगठन का गठन किया। ''अनेक अछूत कार्यकर्ताओं से विचार विमर्श करने के बाद जुलाई 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' (संक्षिप्त रूप : 'बहिस') के पुनर्गठन का निर्णय किया गया। वास्तव में 'बहिस' अंबेडकर की प्रेरणा से ही 1920 में स्थापित की गई थी; किन्तु कई वर्षों से वह निष्क्रिय थी। अंबेडकर ने उसमें नए प्राण फूंके।''[1] 'बहिस' की प्रमुख उद्देश्य थे – दलितों में शिक्षा के प्रचार प्रसार करना; दलित छात्रों के लिए छात्रावासों की व्यवस्था करना; दलितों में संस्कृति के प्रसार के लिए पुस्तकालयों, सामाजिक केन्द्रों एवं अध्ययन मंडलों का संगठन तथा संचालन करना और उनकी आर्थिक

---

1. गणेश मंत्री, गांधी और अंबेडकर, पृ. 139

दशा सुधारने के लिए खेती एवं उद्योग की शिक्षा देने वाले स्कूल खोलना। 'बहिस' सरकार से संपर्क करके अछूतों की कठिनाइयाँ और शिकायतें दूर करने में भी मदद करती थी। अछूतों को अपनी लड़ाई खुद लडने के लिए तैयार करने में शिक्षा, छात्रावासों और पुस्तकालयों का विशेष महत्व था। ये दलित युवकों को शिक्षित करने के साथ ही उनमें अपनी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में जागृति लाने, आन्दोलन करने और संगठित करने में भी सहायक सिद्ध हुए।

१.४.६.१.३. क्रांति की राह : महाड तालाब सत्याग्रह

दलित आन्दोलन के इतिहास में पीने के पानी के अधिकार के लिए दलितों द्वारा किया गया 'महाड तालाब मार्च' का महत्वपूर्ण स्थान है। ''बंबई विधान परिषद में ए.के. बोले ने एक प्रस्ताव के जरिए अस्पृश्यों हेतु सार्वजनिक जल–स्रोतों, कुओं, सरकारी–कार्यालयों, स्कूलों–कचहरियों, सरकार द्वारा निर्मित धर्मशालाओं, दवाखानों के उपयोग की माँग की। 11 सितंबर 1923 को सरकारी आदेशानुसार इस प्रस्ताव को कार्यान्वित किया गया।''[1] लेकिन स्थानीय निकायों और मुनसिपल बोर्डों ने इस आदेश का पालन नहीं किया। दलितों को फिर एक बार अपने नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया। तीन वर्ष बाद सन् 1926 ई. में एस.के. बोले ने पुनः प्रस्ताव रखा कि उन स्थानीय निकायों और मुनिसिपल बोर्डों की आर्थिक सहायता स्थगित की जाए जो परिषद के आदेश का पालन नहीं करते। उक्त प्रस्ताव के संदर्भ में महाड मुनिसिपल बोर्ड ने महाड तालाब (चौदार तालाब) सभी जातियों के उपयोग के लिए खोल दिया। लेकिन सवर्ण इससे क्रुद्ध

---

1. कन्हैया लाल चंचरीक, भारत में दलित आन्दोलन, खंड–1, पृ. 108

हुए।

इस संदर्भ में 18 से 20 मार्च तक 1927 को द्विदिवसीय दलित जातियों की सभा आयोजित की गयी। इसमें 10,000 प्रतिनिधियाँ मौजूद थीं। जिसमें डॉ. अंबेडकर ने आह्वान किया कि दलित अपने मौलिक अधिकारों के लिए आगे आए। स्वसहयोग, स्वाभिमान और स्व–ज्ञान के माध्यम से प्रगति करें। सम्मेलन समाप्ति पर डॉ. अंबेडकर से प्रेरणा ग्रहण कर उनके नेतृत्व में प्रतिनिधियों ने अपने मौलिक अधिकार का प्रयोग करने के लिए चौदार तालाब की ओर पानी पीने के लिए प्रस्थान किया और तालाब से पानी लेने के उद्यम में सफल भी हुए। सवर्णों द्वारा संघर्ष भी हुआ और अनेक दलित सवर्णों द्वारा बुरी तरह से पीटे गए। फिर भी यह दलित आन्दोलन के इतिहास में एक संघर्षपूर्ण अध्याय की शुरुआत बनी।

१.४.६.१.४. मनुस्मृति दहन

25 दिसंबर 1927 को पुनः महाड सत्याग्रहियों का सम्मेलन बुलाया गया। इस दलित सत्याग्रह सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा वर्ण–व्यवस्था की परिपोषक और अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की पक्षधर मनुस्मृति के दहन का सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, ''मनुस्मृति अस्पृश्यों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक दासता को जिन्दा रखती है।''[1] इसीलिए द्वितीय महाड सम्मेलन के अवसर पर 26 दिसंबर 1927 को 'मनुस्मृति' जलाई गई। इसपर ऊँची जातियों में तीखी प्रतिक्रिया हुई। इस आलोचना का उत्तर देते हुए डॉ. अंबेडकर ने बहिष्कृत भारत में लिखा – ''इस प्रकार की आलोचना करने वालों ने या तो मनुस्मृति पढ़ी नहीं है अथवा उनको मनुस्मृति में वर्णित नियम मान्य हैं।

1. डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड 2, प्र. सं. डॉ. श्यामसिंह शशि, पृ. 118

इस देश की यह परंपरा हो गई है कि राजनीति में गरमपंथी लोग समाजनीति में नरमपंथी होते हैं। हमने मनुस्मृति का जो वाचन किया है, उससे तो यह बात पुख्ता हो गई है कि वह शूद्रों की निंदा करने वाले, उनका अपमान करने वाले, उनके माथे पर कुटिल जन्म का कलंक थोपने वाले तथा उनके बारे में समाज में अनादर बढ़ाने वाले वचनों से ओत–प्रोत है। उसमें धर्म की धारणा नहीं वरन् धर्म की विडंबना है। आत्मनिर्णय के तत्व को प्रस्थापित करने के लिए संकल्पशील सुधारवादियों को ऐसा ग्रंथ कभी मान्य नहीं हो सकता। वह हमें भी मान्य नहीं है।''[1] इस प्रकार डॉ. अंबेडकर सामाजिक जीवन में अछूतों के हितों और अधिकारों के लिए संघर्ष किया गया पूरे महाराष्ट्र में नवजागरण के स्वर बुलंद हुआ और इसका असर पूरे भारत पर पड़ने लगा। एक ओर अंबेडकर दलितों को संगठित करने का प्रयास कर रहे थे तो दूसरी ओर वे प्रत्यक्ष आन्दोलन को नेतृत्व देकर क्रांतिकारी कदम उठा रहे थे। इससे दलितों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभर कर आयी।

१.४.६.२. राजनीतिक आन्दोलन

अंबेडकर आन्दोलन के दूसरा पड़ाव में उन्होंने दलितों के राजनीतिक अधिकारों को लेकर संघर्ष किया। क्योंकि उनके अनुसार, ''सभी प्रकार की सामाजिक उन्नति की कुंजी रानजैतिक शक्ति है। यदि अनुसूचित जाति ने संगठित होकर भारत में एक तीसरी राजनैतिक शक्ति बनाई और कांग्रस तथा समाजवादियों के सामने एक तीसरी शक्ति के रूप में खड़ा कर लिया तो अपनी मुक्ति का द्वार वे स्वयं खोल सकते है।''[1] अतः डॉ. बी.आर. अंबेडकर द्वारा दलितों

---

1. डॉ. अंबेडकर, बहिष्कृत भारत, 3 फरवरी, 1928 पृ. 21

का राजनीतिकरण करने का भरसक प्रयास किया गया।

१.४.६.२.१. गोलमेज़ परिषद और कम्यूनल अवार्ड

ब्रिटिश सरकार की आरे से लंदन में आयोजित गोलमेज़ परिषद् सन् 1930 ई. की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी। इसका आयोजन साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर कार्यवाई करने के उद्देश्य से किया गया था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार भारतियों से परामर्श करके भारत के लिए नया संविधान तैयार करना चाहता था। ''गोलमेज़ परिषद् में नवासी प्रतिनिधि आमंत्रित किये गये थे। उसमें से सोलह तो ब्रिटन के तीनों राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि थे। .... अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए डॉ. अंबेडकर और रावबहादूर श्रीनिवास आमंत्रित किए गए थे।''[2] 20 नवंबर 1930 को लंदन गोलमेज परिषद की पांचवीं बैठक में दलित वर्गों के लिए राजनीतिक सत्ता में भागीदारी को बल देकर डॉ. अंबेडकर ने कहा – ''हम यह महसूस करते हैं कि जब तक दलित वर्गों के हाथ में राजनीतिक सत्ता नहीं आती, उनकी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह सत्य है और हमारे विचार में इसके अलावा और कुछ सत्य हो ही नहीं सकता कि दलित वर्ग की समस्या मुख्य रूप से राजनीतिक समस्या है और उसे ऐसा ही माना जाना चाहिए। हम जानते है कि राजनीतिक सत्ता अंग्रेज़ों के हाथ से निकलकर ऐसे लोगों के हाथों में जा रही है जिनका हमारे जीवन पर अत्यधिक आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक प्रभुत्व है। .... हम इस आशा पर यह खतरा भी उठने को तैयार हैं कि अपने देशवासियों के साथ–साथ हमें भी राजनीतिक सत्ता में पर्याप्त

---

1. डॉ. अंबेडकर, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, शंभुनाथ (सं.), पृ. 884
2. गणेश मंत्री, गांधी और अंबेडकर, पृ. 176

प्रतिनिधित्व मिलेगा।''[1] क्योंकि जिस व्यक्ति के पास सत्ता होती है वह अधिकतर ताकतवर होती है। इसलिए दलित वर्ग अपनी सुरक्षा और संरक्षण के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व का दावा कर रहे थे।

डॉ. अंबेडकर ने दूसरी जगह दलित और अल्पसंख्यकों की समस्याओं को पृथक बताया क्योंकि अल्पसंख्यकों की सामाजिक हैसियत बहुसंख्यकों की सामाजिक हैसियत से उतनी कम नहीं है जितनी दलितों की। दलित वर्ग की सामाजिक हैसियत एक आम आदमी की सामाजिक हैसियत से भी गई गुजरी है। दलितों को या तो कोई अधिकार प्राप्त नहीं है या जहाँ कुछ मिले हुए भी हो वहाँ के बहुसंख्यकों ने इसे इस्तेमाल से दूर भी रखा है। डॉ. अंबेडकर का विश्वास था कि भारत का भावी संविधान इस देश की सत्ता को जिन बहुसंख्यकों के हाथ में सौंपेगा वह रूढ़ीवादी हिन्दू ही होगा। अल्पसंख्यकों के साथ भविष्य में पक्षपात होने की संभावना के कारण ही वह अल्पसंख्यकों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की माँग करता है।

गोलमेज़ सम्मेलन में डॉ. अंबेडकर और राव बहादूर आर. श्रीनिवास ने दलित वर्ग की सुरक्षा के संबंध में सुझाव रखते हुए समान नागरिकता प्राप्त करने हेतु मौलिक अधिकारों को संविधान में दर्ज करने का शर्त रखा। साथ ही साथ समान अधिकारों का स्वतंत्र उपयोग और सामाजिक बहिष्कार के लिए दण्ड पर भी जोर दिया। उनके शर्त में भेदवाभाव के खिलाफ संरक्षण, नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व, विधान मंडल में समुचित प्रतिनिधित्व, विधायिका और कार्यपालिका पर पर्याप्त अधिकार मिलने हेतु कानून में जोडी पानी वाली बिन्दुओं को शामिल कर

---

1. डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड 5, प्र. सं. डॉ. श्यामसिंह शशि, पृ. 18–19

दलित वर्ग की सुरक्षा को और भी मजबूत किया।

१.४.६.२.२. पूना पैक्ट

17 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने 'कम्यूनल अवार्ड' की घोषणा की। इसमें दलित जातियों को पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला और साथ ही आम निर्वाचन में भी मत देने और उम्मीदवारी करने का अधिकार भी मिला। इसके विरोध में 20 सितंबर 1932 को गाँधीजी ने आमरण अनशन शुरु किया। क्योंकि ''गाँधी और कांग्रस की निगाह में अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल स्वीकार करने का अर्थ होना जाति, धर्म, संप्रदाय और भाषा के आधार पर सीमित हितों को, देश की आज़ादी जैसे महत्वपूर्ण मामलों में दखल देने और वीटो करने का अधिकार दे देना; और भारतीय राष्ट्र की प्रतिनिधि एवं प्रवक्ता होने के अपने दावे को स्वयं ही नकार देना।''[1] इसी कारण से गाँधी अछूतों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व और निर्वाचक मंडल समर्थन नहीं करके इसका विरोध किया।

डॉ. अंबेडकर अछूतों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की अपने माँग से हटने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए डॉ. अंबेडकर और कांग्रस नेताओं के बीच हुई चर्चा के फलस्वरूप गाँधीजी के साथ समझौता करने के लिए वे राज़ी हुए। 24 सितंबर 1932 का गांधी, डॉ. अंबेडकर समझौता दलित इतिहास में 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।''[2] पूना पैक्ट के अनुसार कम्यूनल अवार्ड के बदले हरिजनों के लिए कुछ सीटें सुरक्षित कर दीं जहाँ से अछूत के अलावा हिन्दू–मुसलमान या अन्य धर्मावलंबी चुनाव न लड सकें।

---

1. गणेश मंत्री, गांधी और अंबेडकर, पृ. 182
2. कन्हैया लाल चंचरील, भारत में दलित आन्दोलन, खंड–1, पृ. 160

१.४.६.२.३. इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी

देश में अछूत–दलितों को कांग्रस के बहकावे से दूर रखने के लिए अंबेडकर द्वारा स्वतंत्र राजनीतिक दल 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' का गठन किया गया। थोमस मैथ्यू के अनुसार, "The Independent Labour Party founded by Dr. Ambedkar in 1936 was a conscious attempt to overcome the limits of economism. The party had a programme for the workers and peasants as well as the lower middle classes. It favoured legislation to protect tenants from exactations and evictions by the landloads as also for certain benefits as available to industrial workers."[1] इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के ज़रिए अंबेडकर दलित–पिछड़ों, भूमिहीन, निर्धन किसानों, निर्धन खेतिहरों और श्रमिकों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया। इस पार्टी की खास विशेषता को अशोक भारती ने इस प्रकार व्यक्त किया है – ''पार्टी ने हर तरह के पुरातनवाद और प्रतिक्रियावाद के खिलाफ एक निश्चित सामाजिक कार्यक्रम रखा। ... पार्टी ने अपने कार्यक्रम में पुराने उद्योगों के पुनर्वास और नए उद्योग शुरु करने पर जोर दिया। ... उद्योगों की उत्पादकता व दक्षता में सुधार लाने के लिए पार्टी ने तकनीकी शिक्षा का विस्तृत कार्यक्रम किया।''[2] 1957 ई. के चुनावों में जीत भी हासिल की गयी। सन् 1941 के समय अछूत रेलवे कर्मचारियों को संगठित किया गया, ब्रिटिश सरकार से पुलीस और सेनाओं में आरक्षण की माँग की गयी। इस प्रकार श्रमिकों की आर्थिक विषय को भी अपने आन्दोलन में शामिल किया गया।

---

1. Thomas Mathew, Ambedkar : Reform or Revolution, P. 58
2. अशोक भारती, अपेक्षा, जनवरी–मार्च 2006, पृ. 18

डॉ. बी.आर. अंबेडकर सन् 1946 ई. में संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने। संविधान सभा में रहते हुए इन्होंने अछूत, कमजोर और पिछडे वर्गों के लोगों के लिए आरक्षण के प्रावधान सुनिश्चित करवाये। अस्पृश्यता के उन्मूलन को लेकर डॉ. अंबेडकर का कथन है – ''संविधान समिति ने भावि संविधान की जो मसौदा तैयार किया है, उसमें अस्पृश्यों के अधिकार का प्रावधान है। नए संविधान की 9वीं धारा द्वारा अस्पृश्यता को समूल नष्ट कर दिया गया है। किसी प्रकार का जाति–भेद, ऊँच–नीच का भावना रद्द कर दी गयी है।''[1] इस प्रकार संविधान के अन्तर्गत अस्पृश्यता निवारण का पहला कदम डॉ. अंबेडकर ने ही उठाया है।

सन् 1947 ई. में अम्बेडकर भारत के पहले कानून मंत्री बने। हिन्दू कोड बिल को लेकर प्रधान मंत्री से विवाद हुआ। हिन्दू कानून की कुछ शाखाओं को नियम बद्ध करने तथा उनमें संशोधन करने के लिए डॉ. अंबेडकर ने सन् 1948 ई. में हिन्दू कोड बिल लोकसभा में पेश किया था। इसमें उत्तराधिकार गुजारा (भरण–पोषण), विवाह, तलाक, गोद लेना, नाबलिगपन और अभिभावकता के कानून पर हिन्दुत्व की एकता तथा प्रगतिशीलता की दृष्टि से विचार किया गया था। लेकिन इस बिल को लेकर जनता तथा नेताओं में इतना प्रचंड विरोध पैदा हुआ कि नेहरु की सलाह से डॉ. अंबेडकर ने इस बिल का संशोधन किया। "The bill embodied several basic principles of women's rights: it sought to abolish different marriage systems prevalent among Hindus and to establish monogamy as the only legal system. It aimed at conferment of right to property and adoption on women. It provided for restitution of conjugal rights and judicial separatism. It attempted to

---

1. डॉ. अंबेडकर, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, शंभुनाथ (सं.), पृ. 889

unify the Hindu code in tune with progressive and modern thought."[1] इस बिल के केवल विवाह तथा तलाक से संबंधित भाग को एक स्वतंत्र बिल के रूप में पेश किया गया। इसका भी विरोध हुआ। यह बिल नाकामयाब रहा। एक ओर अंबेडकर ने दलितों को संवैधानिक संरक्षण के लिए संघर्ष किया तो दूसरी ओर जन–आन्दोलन को नेतृत्व दिया।

१.४.६.३. धार्मिक आन्दोलन

धार्मिक आन्दोलन का पहला पडाव अंबेडकर ने नासिक से शुरु किया था। नासिक के कलाराम मंदिर में अछूतों का प्रवेश निषिद्ध था। सन् 1930 ई. मार्च 2 को डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में ने अछूतों ने कालाराम मंदिर की ओर बढ़ा। अछूतों और हिन्दुओं के बीच संघर्ष हुआ। वे लोग मंदिर में प्रवेश न कर पाये इस उद्देश्य से मंदिर का द्वार बन्द कर दिया गया। 3 साल बाद सन् 1933 ई में कानूनी लडाई के परिणामस्वरूप कालाराम मंदिर अछूतों के लिए खोल दिया गया।

चावदार तालाब आन्दोलन और कालाराम मंदिर आन्दोलन के बाद भी समाज में किसी भारी परिवर्तन न देखकर उन्होंने सन् 1929 ई. में धर्मांतरण की घोषण की। हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपनाने के लिए उन्होंने लंबं 27 साल का चिंतन मनन किया। अंततः 14 अक्तूबर 1956 को एक विशाल जनसभा में लाखों दलितों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन से वर्ण–वादी हिन्दु धर्म को अघात पहूँचाया और जातिभेद से मुक्ति का एक नया मार्ग प्रस्तुत किया।

---

1. Thomas Mathew, Ambedkar : Reform or Revolution, P. 72

१.४.७. हरिजन आन्दोलन

महात्मा गाँधी ने हरिजन आन्दोलन का नेतृत्व किया। ''उन्होंने दलितों को 'हरिजन' नाम दिया।''[1] गाँधी अस्पृश्यता के सामाजिक अभिशाप को मिटाना चाहते हैं, भारत के सर्वाधिक उत्पीडित वर्ग को सदियों से चली आ रही जन्मजात छुआछूत को मिटाना चाहते हैं। गाँधी वर्णाश्रम धर्म के समर्थन करते हुए छुआछूत या अस्पृश्यता मिटाना चाहते थे, यानी हिन्दू धर्म में सुधार करना चाहते थे। छुआछूत को हिन्दू धर्म के कलंक मानते हुए भी अंबेडकर की तरह वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध लडना नहीं चाहते थे। गाँधीजी का कथन है कि ''हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता को कोई स्थान नहीं है। यदि यह अस्पृश्यता प्रथा न गई तो हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।''[2] यहाँ स्पष्ट है कि गाँधी की अवधारणा सिर्फ अस्पृश्यता का नाश चाहती थी। वह वर्ण–व्यवस्था की समर्थक थी और उसे हिन्दुत्व की रीढ़ मानते थे। उन्होंने मंदिर प्रवेशन का समर्थन तो किया किन्तु वर्णगत पैतृक पेशे त्यागने का भी विरोध किया। गाँधी दलितोद्धार के लिए वर्ण व्यवस्था का विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाये थे।

गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के कार्य को गहरी निष्ठा से प्रारंभ किया लेकिन इसके लिए वर्णाश्रम धर्म, ईश्वर का नकार नहीं करता है। गाँधी विजातीय विवाह और सहभोज जैसे कार्यों को मानने के लिए तैयार नहीं थे। एक ओर वे सनतानी हिन्दू हैं तो दूसरी ओर स्वतंत्रता आन्दोलन में बहुसंख्यक हिन्दूओं को नाराज नहीं कर सकते थे।

---

1. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 63
2. गाँधी, हरिजन पत्रिका, दिनांक, 10.02.1942

अछूतोद्धार आन्दोलन के तहत गाँधी जी ने जो कार्य किया वह स्मरणीय हैं ''गाँधीजी ने 1932 में दलित उद्धार के हेतु 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की थी। हरिजन पत्रिका भी प्रकाशित की थी।''[1] उन्होंने हरिजन सेवक संघ की कार्यों को पूरे राष्ट्र पर फैला दिया। फिर भी पूना पैक्ट के जरिए भारतीय राजनीति में दलितों की प्रतिनिधित्व पर असहमति भी व्यक्त किया। अतः स्पष्ट है कि उनका लक्ष्य अछूतों को हिन्दू धर्म का हिस्सा बनाये रखना चाहते थे। इसलिए गाँधी का हरिजन–आन्दोलन सफल नहीं रहा।

१.४.८. दलित पैंथर आन्दोलन

सन् 1959 ई तक आते आते भारतीय रिपब्लिक पार्टी का विघटन हुआ। इसने दलित जनता को भी विघटित किया। इस जनता को एकीकृत करने के लिए और दलित जनता को उसके राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने तथा उसे संघर्ष के पद पर लाने के लिए महाराष्ट्र में दलित पैंथर आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। ''जो भारतीय यथास्थिति के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ एवं सामन्तवादी हिन्दू राजशाही का कट्टर विरोधी या जो यथास्थिति के स्थान पर क्रांति या समग्र क्रांति द्वारा सामाजिक न्याय स्थापित करना चाहता था, जिसमें अंबेडकर और मार्क्स विचारधारा की झलक थी।''[2] सन् 1970 ई. के आसपास देशभर में अनुसूचित जातियों पर प्रत्यक्ष रूप से अत्याचार की घटनाएँ बढ़ गई थीं। इसके विरुद्ध जुलाई 9 को मुम्बई के सिद्धार्थ नगर में दलित युवकों की बैठक हुई। इस बैठक का प्रारंभ दलित पैंथर संगठन के निर्माण को घोषित

---

1. डॉ. नरसिंहदास खेमदास वणकर, दलित विमर्श, पृ. 55
2. अजय कुमार, दलित और आन्दोलन, पृ. 56

करने वाले 'मानिफेस्टो' के रूप में हुआ। इस 'मानिफेस्टो' ने दलित जनता को दलित पैंथर के झंडे तले आ जाने का आह्वान किया। राजा ढ़ाले इसका 'प्रेसिडेंट', नाम देव ढ़साल इसके 'प्रतिरोधमंत्री' और जे.वी. पवार 'जेनरल सेक्रटरी' हुए।

दलित पैंथर के लिए पूरा शोषित जन दलित है। उसके अनुसार अनुसूचित जाति और जनजाति, नव–बौद्ध, श्रमिक गण, भूरहित किसान, स्त्री आदि राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक रूप से शोषित दलित है। "They made popular the term 'Dalit', in preference to terms like Harijans and untouchables."[1] दलित पैंथरों ने अमरिका 'ब्लैक पैंथर आन्दोलन' से प्रभावित होकर अपने आन्दोलन के लिए 'दलित पैंथर आन्दोलन' शब्द का प्रयोग किया गया।

अठारह माँगें उसके 'मानिफेस्टो' में सूचित थीं। वे संपूर्ण क्रांति के पक्षधर थे। आंशिक बदलाव से अभी तक कोई फायदा नहीं हुआ है। इसी लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर अपना अधिकार स्थापित करना उनका लक्ष्य था। धीरे–धीरे इसकी शाखाएँ पूना, नासिक और औरंगबाद में खुलीं जहाँ दलित जनता अधिक थी। बाद में गाँवों में भी इसकी शाखाएँ खुली।

पैंथरों ने स्पष्ट रूप से डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर की विचारधारा को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने इसी विचारधारा को विकसित किया। लेकिन बाद में उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को भी आत्मसात किया। नाम देव ढ़साल और उनके अनुयायी मार्क्सवाद से प्रभावित थे। उनके लिए दलित आन्दोलन विश्व भर के पददलितों के लिए है। इसी कारण ही उन्होंने दलित को

---

1. Sanjay Paswan, Parasmansi Jai Deva (Edi.), Encycloepedia of Dalits in India, Volume 3, Movement P. 328

जाति के साथ वर्ग की संयुक्तता में पारिभाषित किया। ''उन्होंने अपने मुद्दे को मानवीय मुक्ति के लिए वैश्विक सर्वहारा संघर्ष से जोड़ा जैसे कि अमेरिकी ब्लैक पैंथर आन्दोलन तथा वियतनाम, कम्बोडिया एवं आफ्रिका में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष।''[1] वैश्विक सर्वहारा वर्ग के समान दलित पैंथरों ने भी दलितों की ज्वलंत समस्याओं को दर्शाया जैसे भोजन, पानी, आवास, रोज़गार तथा भूमि की कमी तथा उनकी असमान सामाजिक स्थिति।

१.४.८.१. प्रथम चरण

15 अगस्त 1972 की रात स्वतंत्रता की 25वीं वर्षगांठ मनाने के विरोध में पैंथरों ने मोर्चा निकाला। और उस दिन काला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। ''उस दिन पैंथरों ने काले झंडे लेकर विधान सभा के बाहर घोषणा की कि यदि विधान परिषद या संसद सामान्य व्यक्ति की विषमताओं का हल नहीं करेगी तो पैंथर उन्हें जलाकर राख कर देंगे।''[2] राजा ढ़ाले पर 'काला स्वतंत्रता दिन' नामक लेख के लिए केस थोंपा गया। इसके विरोध में 10 सितंबर 1972 को पुणे में कांडनसिल हाल में तीन दिन की केबिनट बैठक के समय पैंथरों ने वहाँ के लिए मोर्चा निकाला और प्रदर्शन किया। इसकी मांग थी कि ढ़ाले का लेख 'काला स्वतंत्रता दिन' के लिए उनपर थोंपे गये केस को वापस लिया जाए।

पैंथरों ने अलग दलित स्थान के लिए मांग की धमकी भी दिया। ''14 अगस्त 1973 को सचिवालय तथा जिला कलक्टर ऑफिस के विरुद्ध मोर्चा निकाला गया। उसका नारा था कि अगर दलितों पर अत्याचार होते रहे तो अलग

---

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृ. 105–106
2. वही, पृ. 105–106

से दलित स्थान लेने के लिए आन्दोलन को प्रबल बनाएंगे। 21 जनवरी 1974 को आज़ाद मैदान से सचिवालय तक सभी पार्टियों ने मिलकर मोर्चा निकाला। इसमें इनके साथ मगोवा, प्रोग्रसीव यूथ मूवमेंड, समाजवादी युवजन सभा, युवक क्रांति दल आदि शामिल थे। इसमें दलितों द्वारा की गयी शिकायतों पर विशेष जांज के लिए एक अतिरिक्त पुलीस आयुक्त की मांग और पुलीसवालों के पद पर 30 से 40 प्रतिशत दलितों के आरक्षण की मांग थी। 29 मार्च 1974 को बढ़ती बेरोजगारी के विरुद्ध दलित पैंथर के नेतृत्व में सविचालय तक मार्च निकाला गया।''[1] दलित पैंथरों ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों और उत्पीडनों के विरुद्ध मोर्चा निकालकर अधिकारियों को चेतावनी दी रही थी। साथ ही साथ दलितों को उत्पीडनों के विरुद्ध संघर्ष पद पर ला रहे थे। दलित पैंथर यह विश्वास रखता था कि दलित की दुर्दशा का मुख्य कारण हिन्दू जाति के प्रमुख में बनी सरकार है। उसका विद्रोह सामन्तवादी, पूँजीवादी ढाँचे एवं राजनीतिक अधिकारों से है।

१.४.८.२. दूसरा चरण

दूसरे चरण तक आते–आते दलित पैंथर दो टुकडों पर बाँटा गया। एक ढ़ाले गुट, दूसरा ढसाल गुट। ढाले गुट ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों के विरोध में प्रदर्शन किया। दो ज्ञापन मुख्य मंत्री को प्रस्तुत किये गये। पहला ज्ञापन सन् 1975 दिसंबर की मांगें है – ''अवैधानिक तरीके से छीनी गई ज़मीन का पुनर्वितरण द्वारा अधिकार असली मालिकों को दी जाए। जातिवादी अत्याचारों में लिप्त अपराधियों को 'मीसा' के अन्तर्गत गिरफ्तार किया जाए। दलित छात्रों की छात्रवृत्तियाँ और दलितों के लिए रोज़गार बढ़ाए जाएं। डॉ. अंबेडकर के लेखों

---

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृ. 63

को दूसरी भाषाओं में अनुवादित किया जाए। दलितों की आवस–ऋण सुविधाएँ बढाया जाए। और को–ओपरेटीव–सोसाइटियों में दलितों को शयर धारकों के रूप में पंजीकरण हो।''[1] और दूसरा ज्ञापन सन् 1976 ई. जनवरी को प्रस्तुत किया गया जिसकी प्रमुख मांगें है – ''दलित पैंथरों के विरुद्ध सभी केसों को वापस लिया जाए। बारहवीं कक्षा के दलित छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ बढ़ाया जाएं। डॉ. अंबेडकर जयंती पर बंदिशें हटाया जाए और दलितों के लिए अलग से एक रोज़गार कार्यक्रम हो।''[2] इन ज्ञापनों के परिणाम स्वरूप कुछ दिनों बाद सरकार ने एक आदेश जारी करके दलित पैंथरों के विरुद्ध सभी केसों को वापस ले लिया। इस चरण में ढाले गुट ने दलितों पर हुए अत्याचारों के विरुद्ध सरकार का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ।

ढसाल गुट मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण दलितों की आर्थिक न्याय पक्ष पर ज़्यदा जोर दिया था। नाम देव ढसाल ने पैंथरों को सम्मेलन आयोजित करने की प्रेरणा दी। ''इन सम्मेलन में सरकार से कहा गया कि असली मालिकों को उनके पास से छीनी गई जमीनें वापस की जाएं क्योंकि इसके कारण लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, सीलिंग एक्ट को क्रियान्वित करने से पहले सरकार छीनी जमीन की समस्या का हल करे, किसी न्यायसंगत कानून द्वारा भूमि मुक्ति आन्दोलन का समर्थन बढ़ाया जाएं, गरीब किसानों को कम दरों पर उर्वरक एवं बीज आदि प्रदान किया जायें, महार भूमि कारोबार को अवैधानिक घोषित किया जाए यदि वह जमीन सरकार से संबंध रखती है तो।''[3] इस प्रकार दलित

---

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृ. 67
2. वही, पृ. 67–68
3. वही, पृ. 69

पैंथरों ने अपने न्याय के लिए आवाज उठाई। इसके फलस्वरूप सरकार ने एक आदेश जारी किया और हज़ारों एकड़ भूमि अमीर जमीन्दारों से लेकर उनकी असली मालिकों अथवा गरीब किसानों को दी गई। आगे के सम्मेलनों में झोंपड पट्टियों में रहने वाले छात्रों को लाइब्रारी प्रदान करने, काले धन को जप्त करके झोंपड़–पट्टियों की कॉलनियों के विकास पर खर्च किया जाने, अपने समय में जो विशेषाधिकार अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को मिल रहे हैं उन्हें नव–बुद्धिस्टों को दिलाना आदि मद्दे उठाये गये। मराठवाड़ा यूनिवर्सिटी का नाम डॉ. अंबेडकर के नाम से नामांतरण करने का प्रस्ताव भी रखा गया।

१.४.८.३. तीसरा चरण

सन् 1977 ई. तक आते–आते दलित पैंथर संगठन कई गुटों में बंट गया तथा अलग–अलग आन्दोलन चलाये गये। इनमें प्रमुख थे मास मूवमेंट, महाराष्ट्रा दलित पैंथर आदि। मास मूवमेंट का अहिंसा तथा शांतिपूर्ण उपागम पर कडा विश्वास था। इसके अन्तर्गत प्रयोजन–उन्मुख कार्यक्रमों पर बल दिया गया। अनेक सम्मेलन, बैठक और जुलूस निकाले गये। उनकी मांगें थीं कि ''1. नौकरी लगाने के आयु के अन्तर्गत ही बेरोजगार युवाओं को तुरंत रोजगार दिया जाए। 2. बेरोजगार युवकों को कुछ भत्ता दिया जाए।''[1] इस प्रकार दलित जनता की समस्याओं से नीति निर्णायकों को अवगत कराया और संस्थागत स्रोतों पर जोर दिया।

दलित पैंथर्स के इस विभाजन के विरोध में दलित लोग डॉ. अरुण कांब्ले, रामदास अतावले, रमेशचन्द्र परमार आदि के नेतृत्व में इकट्टा हुए।

---

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृ. 111

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दलित इन इंडिया में डॉ. अरुण काब्ले को इसप्रकार उद्धृत किया गया है कि "The Dalit Panthers was formed not because Dhale and Dhasal choos to organise it, but because the dalits felt that for justice they needed to be organized the Panther is no body's personal estate, it is the voice of oppressed."[1] दलित पैंथर्स को पददलित लोगों के आवाज़ कहकर उन लोगों ने आरक्षण के मुद्दे को लेकर संघर्ष किया। इसके बाद दलित पैंथरों का अनेक शाखाएं उत्तर भारत में खुलीं फिर भी यह ज्यादातर नगरों में ही केन्द्रित थीं। जबकि गाँवों में अनेक लोग अब भी पददलित, अस्पृश्य ही रह गये हैं। इस लिए यह दलित पैंथर आन्दोलन आंशिक सफलता ही पा सका।

दलित पैंथर आन्दोलन ने दलितों को अपनी भयावह दासता से लडने के लिए सशक्त बनाया। शोषण युक्त असमान जातिव्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठायी। रिप्पब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के नेताओं की सत्तात्मक राजनीति का विरोध किया। डॉ. अंबेडकर के विचारधारा को आगे बढ़ाने को पहल की और हरिजन और अछूत के बदले 'दलित' शब्द को प्रचारी बनाया। अलग अस्मिता और प्रति संस्कृति का निर्माण करने का प्रयास किया गया। युवा पीढ़ी के सोच को समझने में और उन लोगों में क्रांतिकारी चेतना पैदा करने में दलित पैंथर सफल हुए। दलित पैंथर आन्दोलन दलित साहित्य के माध्यम से दलित साहित्य आन्दोलन की शुरुआत की।

---

1. Sanjay Paswan, Parasmansi Jai Deva (Edi.), Encycloepedia of Dalits in India, Volume 3, Movement P. 326

दलित पैंथर की कथनी और करनी में ज्यादा अंतर रह गया। देश के दलितों को एकत्रित और संगठित करने के लिए दलित पैंथर की स्थापना हुई थी, लेकिन खुद दलित पैंथर अनेक गुटों में विभाजित हो गया। यह सिर्फ नेताओं का आन्दोलन रह गया, इसका आम दलितों और पीडितों से उतना कोई सरोकार नहीं था। यह भी देखा गया कि दलित पैंथर के नेताओं और बुद्धिजीवियों के बीच कोई तालमेल नहीं रह गया था। संप्रदायवादी एवं अलगाववादी व्यवस्था ने दलित पैंथरों को अन्य दलितों से विमुख कर दिया। जैसे मांग, चमार, ढोर, वाडार, होलार उपजातियों के दलितों से। ऊपर से दलित पैंथरों ने गाँवों में दलितों की स्थिति को समझने का कोई सशक्त प्रयास नहीं किया। यह आन्दोलन ज्यादातर मुम्बई, नासिक, पूना, औरंगबाद, नागपूर, शोलापुर और अन्य शहरी स्थानों तक ही सीमित रहा। जो स्थानीय नेता छोटे शहरों में काम कर रहे थे उनका शहरी नेताओं से संपर्क स्थापित करना मुश्किल था। इस प्रकार पैंथर नेताओं के बीच समन्वय की कमी थी। इसके अलावा कार्यक्रम संचालन में वित्तीय स्रोतों की कमी थी। दलित पैंथरों ने अपने आन्दोलनों को समानार्थी अन्य आन्दोलनों से जोडने में भी असफल रहा।

१.४.९. कांशीराम का आन्दोलन

सत्तर के दशक में 'बहुजन समाज पार्टी' राजनैतिक दलित आन्दोलन का वाहक बन गया। इस आन्दोलन के नायक कांशीराम था। इन्होंने ही बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की और कहा कि बहुजन समाज पार्टी पहले सामाजिक आन्दोलन है और बाद में राजनैतिक आन्दोलन। लेकिन बि.एस.पी. की निर्माण तक पहूँचने के लिए इन्हें कई संगठनात्मक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा जो

सामाजिक आन्दोलन के आधार है। इसमें पहला है 'बामसेफ' यानी बाकवर्ड एंड मैनारिटी कम्यूनिटीज़ इम्प्लाईस फेडरेशन (Backward Minority Communities Employees Federation)। ''6 दिसम्बर 1978 को कांशीराम ने अनुसूचित जाति/जनजाति पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक समुदाय के कर्मचारियों को संगठित करने के लिए 'बामसेफ' नामक गैर–राजनैतिक संगठन की स्थापना की।''[1] केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय निकायों, बैंकों, स्वशासित संस्थाओं, विद्यालयों, और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में कार्यरत दलित, पिछड़े अल्पसंख्यक वर्ग के कर्मचारियों के बीच 'बामसेफ' का प्रसार किया गया। इसका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कांशीराम ने लिखा, ''पिछडा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय के शिक्षित कर्मचारियों को संगठित करने के पीछे जो उद्देश्य है वह यह है – उस पददलित एवं शोषित समाज, जिसमें वे पैदा हुए हैं, को दासता से समग्र रूप से मुक्त करना।''[2] शिक्षित कर्मचारियों को संगठित करने का उद्देश्य था कि उनके पास शिक्षा, पैसा एवं अनुभव है, इससे पूरे शोषित समाज के उत्थान के लिए दलित–पिछड–अल्पसंख्यकों को तैयार किया जा सके। डॉ. विवेक कुमार के अनुसार, ''बामसेफ के माध्यम से इसके संस्थापक कांशीराम ने ''पै बाल टु दी सोसाइटी' का नारा दिया यानी जिन दलितों ने दलित समाज से लाभ लिया है उनका कर्तव्य बनता है कि अगर वे इस स्थिति में पहूँच गए हैं कि वे समाज को कुछ दे सकते हैं, तो अवश्य दें।''[3] बामसेफ के कारण पहली बार दलित मध्यवर्ग ने जनता को कुछ दिया। बामसेफ के ज़रिए कांशीराम ने दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यक समुदायों के शिक्षित और अपेक्षाकृत जागृत वर्ग को अखिल भारतीय

---

1. विनोद अग्निहोत्री, हरिजन से दलित, सं. राज किशोर, पृ. 81
2. कांशीराम, बामसेफ एक परिचय, पृ. 6
3. डॉ. विवेक कुमार, अपेक्षा, जनवरी–मार्च, 2006, पृ. 38

स्तर पर जोड़ने में सफलता प्राप्त की। ''बामसेफ को कांशीराम ने पूरी तरह गैर–राजनैतिक और गैर–आन्दोलनकारी संगठन बनाया। लेकिन बामसेफ ने ही वह ज़मीन तैयार की, जिस पर आज बहुजन समाज पार्टी की फसल खड़ी है। इसी लिए बसपा के अंदर बामसेफ को बहुजन समाज का 'ब्रेन बैंक, टैलेंट बैंक और आर्थिक बैंक'[1] माना जाता है। इस तरह 'बामसेफ' के द्वारा कांशीराम ने बिखरे हुए शिक्षित और रोजगार दलितों को एकत्रित करने और अपने समाज के लिए वापस कुछ देने के लिए प्रेरणा दी। 'बामसेफ' बहुजन समाज के आर्थिक और बौद्धिक आधार बन गये।

बहुजन के सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाला बामसेफ दलितों द्वारा चलाये जा रहे राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों को वैचारिक नेतृत्व प्रदान करता है। आर.के. सिंह बामसेफ के इस सिद्धांत को इस प्रकार व्यक्त करता है कि ''इनके अनुसार इस वर्णाश्रम समाज का पचासी प्रतिशत तबका जातिवाद के नाम पर शोषित है। इसलिए इसको संगठित होकर जाति की बेडियों को तोड देना चाहिए। इसका मानना यह है कि यह काम देश में लोकतांत्रिक तरीके से किया जा सकता है। चूँकि लोकतंत्र में वोट के माध्यम से सरकार बनती है। इसलिए वोटों की संख्या इनके पास है। क्योंकि यह बहुसंख्यक है बहुजन हैं।''[2] बामसेफ ने अपने संगठनों जैसे जागृति जत्था, बामसेफ सहकारिता और समाचार पत्र प्रकाशन के माध्यम से समाज के लोगों को परिवर्तन के आन्दोलन के लिए प्रेरित किया। जागृति जत्था एक नुक्कट नाटक मंडली है, बामसेफ सहकारिता के

---

1. विनोद अग्निहोत्री, हरिजन से दलित, सं. राज किशोर, पृ. 81
2. आर.के. सिंह, कांशीराम और बि.एस.पी. पृ. 115

माध्यम से धन एकत्रित करता है और पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अपने इतिहास, संस्कृति, साहित्य आदि का खोज एवं सूचनाओं को समाज तक पहूँचाता है।

१.४.९.१. डी.एस. फोर

बामसेफ के माध्यम से कांशीराम ने कार्यकर्ताओं को एक जुट करने और आर्थिक संसाधन इकट्ठा करने का कार्य किया। लेकिन अपने आन्दोलन को और व्यापक बनाने के लिए बहुजन समाज के खिलाफ हो रहे अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए एक जन संगठन की जरूरत थी। इसलिए 6 दिसंबर 1981 को 'दलित शोषित समाज संघर्ष समिति' (डी.एस. फोर) का गठन किया गया। डी. एस. फोर की सदस्यता बहुजन समाज के सभी सदस्यों के लिए खोल दी गयी। प्रारंभ में बामसेफ के सदस्यों ने अपने परिजनों, रिश्तेदारों और मित्रों को इसका सदस्य बनाया। इस संगठन का उद्देश्य बहुजन समाज के बीच अनेक तरह के जागृति कार्यक्रम चलाकर उन्हें परंपरागत सामाजिक दासता के विरुद्ध संगठित करना था। यह एक राजनैतिक पार्टी नहीं थी, लेकिन इसका उद्देश्य एक राजनीतिक शक्ति का निर्माण करना था। ''दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों के बीच बहुजन समाज की चेतना का प्रसार करने के लिए डी.एस. फोर ने देश भर में साइकिल यात्राओं जन संसदों जन संभाओं आदि का आयोजन व्यापक स्तर पर किया। उसके इन कार्यक्रमों का सिलसिला दक्षिण में कन्याकुमारी, उत्तर में कारगिल, उत्तर पूर्व में कोहिमा, पश्चिम में पोरबन्दर और पूर्व में उड़ीसा से शुरु होकर पूरे देश में चलता हुआ दिल्ली में संपन्न हुआ। 6 दिसंबर 1983 से 15 मार्च 1984 (100 दिन) तक चले इस जन जागरण अभियान में तीन लाख से ज्यादा

लोगों ने हिस्सा लिया।''[1] इसके साथ साथ शराब बन्दी आन्दोलन भी चलाया और बहुजन समाज के बीच शराब से होनेवाली सामाजिक और आर्थिक क्षति का प्रचार किया गया।

१.४.९.२. बहुजन समाज पार्टी

बामसेफ और डी.एस. फोर की बहुजन चेतना के विस्तार को राजनीतिक संघर्ष से जोडने के लिए कांशीराम ने 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। 'बसपा' के विषय में अपना मत प्रस्तुत करते हुए आर.के. सिंह ने लिखा है, ''बहुजन समाज पार्टी सामाजिक आन्दोलन की राजनैतिक अभिव्यक्ति है। ... सैद्धांतिक तौर पर इसका लक्ष्य समानता, मानवीय अस्मिता और आत्मसम्मान प्राप्त करना है। उनका वैचारिक आधार ब्राह्मणवाद विरोधी चिंतन परंपरा पर आधारित है।''[2] बहुजन समाज को राजसत्ता पर आसीन कराने के लिए बसपा के रूप में राजनीतिक दल की स्थापना प्रभुता ही थी। इसलिए अन्यायपूर्ण स्थिति की समाप्ती के लिए बहुजन समाज को एक जुट होकर सत्ता पर काबिज करने के लिए बहुजन समाज पार्टी संघर्ष कर रहे थे। ''बहुजन समाज पार्टी ने सामाजिक परिवर्तन के पाँच लक्ष्य निर्धारित किये हैं : आत्मसम्मान के लिए संघर्ष, मुक्ति के लिए संघर्ष, समानता के लिए संघर्ष, जाति प्रथा के उन्मूलन और विभाजित समाज में भाई चारे के लिए संघर्ष, छुआछूत, अन्याय, अत्याचार और आतंक के विरुद्ध संघर्ष।''[3] सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्षरत बसपा यह नहीं

---

1. विनोद अग्निहोत्री, हरिजन से दलित, सं. राज किशोर, पृ. 82
2. आर.के. सिंह, कांशीराम और बि.एस.पी. पृ. 232
3. विनोद अग्निहोत्री, हरिजन से दलित, सं. राज किशोर, पृ. 84

मानते थे कि भारतीय समाज की यह अन्यायपूर्ण सोपानवादी व्यवस्था को छिटपुट सरकारी सुविधाओं, आरक्षण जैसे प्रावधानों से बदल सकती है। सन् 1984 ई. से लेकर अब तक लोक सभा चुना एवं उपचुनावों में बसपा हिस्सा ले रहे है। राष्ट्रीय स्तर पर दलित चेतना के उभार का श्रेय डॉ. अंबेडकर के बाद कांशीराम को जाता है।

कांशीराम का आन्दोलन दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्ग को मिलाकर बहुजन समाज बनाने में सफलता प्राप्त किया। पहली बार शिक्षा, नौकरी प्राप्त बहुजन मध्यवर्ग अपने ही समाज की भलाई के लिए किसी कदम उठाए। बामसेफ, बामसेफ सहकारिता, जागृति जत्था, डी.एम.फोर जैसे सामाजिक संगठनों के ज़रिए बहुजन समाज को संगठित करने, उसकी दिशा निर्धारित करने और बसपा के ज़रिए राजनैतिक रूप प्रदान करने में कांशीराम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अपनी विचारधारा को एक सामाजिक आन्दोलन ही नहीं वरन् सत्ता में भागीदारी का एक आधार बनाया।

निष्कर्ष

अस्पृश्यता, जातिभेद, सामाजिक असमानताओं, शोषण और दासता के शिकार रहे भारत के दलितों ने सामाजिक परिवर्तन हेतु भारत की प्रत्येक दिशा में आन्दोलन चलाये। आधुनिक भारत में फूले से लेकर कांशीराम तक के नेताओं के आन्दोलन से दलितों की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति में आंशिक सुधार ही हो पाया है। दलितों ने एक और धर्मपरिवर्तन भी किया और दूसरी ओर हिन्दूवादी व्यवस्था के अंग भी बनकर रहे, पर वे अभी भी शोषण एवं उत्पीडन का शिकार हैं। बहुतसारे आन्दोलनों के बावजूद जाति–वर्ण व्यवस्था से पीडित दलित जनता की हैसियत में बुनियादी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसलिए आज भी

दलित आन्दोलन सक्रिय रूप से जारी है। फिर भी आज के दलित आन्दोलन पूर्व के आन्दोलनों से बिलकुल भिन्न रूप का है। डॉ. अंबेडकर के आन्दोलन के बाद समाज के उपेक्षितों, दलितों को एक जुट करके संघर्ष करने में दलित नेता असफल रहे हैं। कई गुटों में विभाजित होकर दलित आन्दोलन भारत के लगभग हर–एक राज्य में क्रियाशील है। लेकिन आज के आन्दोलनों में राजनैतिक और सत्तालोलुप मानसिकता का हस्तक्षेप है। राजनीतिक दलों का यह हाल है कि दलितों के वोट बैंक को हथियाने के लिए दलितों में पारस्परिक फूट पैदा कर दी जाती है। और बाबा साहेब के दलितोत्थान आन्दोलन को अपनी राजनीतिक रणनीति से कलुषित किया जाता है। सत्ता, धन, आरक्षण के फायदों आदि को कुछ विशेष वर्ग की जातियों तक ही सीमित हो रहे हैं। इसीलिए अधिकांश दलित आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीने को मजबूर हैं। इनके सामूहिक उत्थान के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये जाते, तो दलितोत्थान से संबंधित जो योजनाएँ चल रही हैं, उनका सकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देता। अधिकांश दलित भूमिहीन हैं। जब तक धन, धर्ती का उचित बंटवारा बराबर नहीं होता तो, यही स्थिति रहेगी। इसके अलावा दलित आन्दोलन के रास्ते में प्रमुख बाधाएँ है मूसलधारों का अभाव और समाज पर कसता जा रहा धार्मिकता का शिकंजा, दलित आन्दोलन का कई हिस्सों में बाँट जाना इस बात का संकेत है कि दलितों के अस्तित्व और उनकी भौतिक बेहतरी के मूल मुद्दों को उठाने में यह आन्दोलन आंशिक सफलता ही पा रहा है।

दलित आन्दोलनों में दलित समाज के पढ़े–लिखे लोगों को, जो दलित आन्दोलन से जुडे हुए थे साहित्य लिखने के लिए प्रेरित किया क्योंकि आन्दोलन को बल मिले। इस प्रकार दलित आन्दोलन और साहित्य एक दूसरे के प्रेरक बने तथा संघर्ष और संगठन के रास्ते में सहायक बने। यहाँ से दलित चेतना और दलित साहित्य का उदय हुआ।